6411

तित्थयर

जैन भवन

चतुर्दश वर्ष : नवम्बर १९९० : सप्तम अंक

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष १४ : अंक ७

नवम्बर १९९०

☐

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

☐

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

☐

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

☐

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७

सूची

कवीश्वर मानतुंग १९५

पार्श्वनाथ जन्मभूमि मंदिर, वाराणसी का पुरातत्त्वीय वैभव २०४

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र २१४

संकलन २२१

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या २२३

तीर्थंकर, श्रवण वेलगोल

कवीश्वर मानतुंग

डा० नेमिचन्द्र शास्त्री

मनुष्यके मनको सांसारिक ऐश्वर्यों, भौतिक सुखों एवं ऐन्द्रियिक भोगोंसे विमुखकर बुद्धिमार्ग और भगवद्भक्तिमें लीन करनेके हेतु जैन कवि मानतुंगने मयूर और बाणके समान स्तोत्र-काव्यका प्रणयन किया है। इनका भक्तामर-स्तोत्र श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंमें समान रूपसे समादृत है। कवि की यह रचना इतनी लोकप्रिय रही है, जिससे इसके प्रत्येक अन्तिम चरणको लेकर समस्यापूर्त्यात्मक स्तोत्र-काव्य लिखे जाते रहे हैं। इस स्तोत्रकी कई समस्यापूर्तियाँ उपलब्ध हैं।

आचार्य कवि मानतुंगके जीवन-वृत्तके सम्बन्धमें अनेक विरोधी विचार-धाराएँ प्रचलित हैं। भट्टारक सकलचन्द्रके शिष्य ब्रह्मचारी पायमल्ल कृत 'भक्तामरवृत्ति'[1] में जो कि विक्रम संवत् १६६७ में समाप्त हुई है, लिखा है कि धाराधीश भोजकी राजसभामें कालिदास, भारवि, माघ आदि कवि रहते थे। मानतुंगने ४८ सांकलोंको तोड़कर जैन धर्मकी प्रभावना की तथा राजा भोजको जैन धर्मका श्रद्धालु बनाया। दूसरी कथा भट्टारक विश्वभूषण कृत 'भक्तामरचरित'[2] में है। इसमें भोज, भर्तृहरि, शुभचन्द्र, कालिदास, धनञ्जय, वररुचि और मानतुंगको समकालीन लिखा है। इसी आख्यानमें द्विसन्धान-महाकाव्यके रचयिता धनञ्जयको मानतुंगका शिष्य भी बताया है।

आचार्य प्रभाचन्द्रने क्रियाकलापकी टीकाके अन्तर्गत भक्तामर-स्तोत्रकी टीकाकी उत्थानिकामें लिखा है—

"मानतुङ्गनामकः शिताम्बरो महाकविः निर्ग्रन्थाचार्यवर्यैरपनीतमहाव्याधि-प्रतिपन्नानिर्ग्रन्थमार्गो भगवन् किं क्रियतामिति ब्रुवाणो भगवतः परमात्मनो गुणगणस्तोत्रं विधीयतामित्यादिष्टः भक्तामर इत्यादि।"

अर्थात्—मानतुंग श्वेताम्बर महाकवि थे। एक दिगम्बराचार्यने उनको महाव्याधिसे मुक्त कर दिया, इससे उन्होंने दिगम्बरमार्ग ग्रहण कर लिया और पूछा—भगवन्! अब मैं क्या करूँ? आचार्यने आज्ञा दी कि

---

1 इसका अनुवाद पं० उदयलाल काशलीवाल द्वारा प्रकाशित हो चुका है।

2 यह कथा जैन इतिहास-विशारद स्व० पं० नाथूरामजी प्रेमीने सन् १९१६ में बम्बई से प्रकाशित भक्तामर-स्तोत्रकी भूमिकामें लिखी है।

परमात्माके गुणों का स्तोत्र बनाओ। फलतः आदेशानुसार भक्तामरस्तोत्रका प्रणयन किया गया।

वि० सं० १३३४ के श्वेताम्बराचार्य प्रभाचन्द्रसूरिकृत प्रभावकचरितमें मानतुंगके सम्बन्धमें लिखा है[३]—

ये काशी निवासी धनदेव सेठके पुत्र थे। पहले इन्होंने एक दिगम्बर मुनि से दीक्षा ली और इनका नाम चारुकीर्ति महाकीर्ति रखा गया। अनन्तर एक श्वेताम्बर सम्प्रदायकी अनुयायिनी श्राविकाने उनके कमण्डलुके जलमें त्रसजीव बतलाये, जिससे, उन्हें दिगम्बर चर्यासे विरक्ति हो गयी और जितसिंह नामक श्वेताम्बराचार्यके निकट दीक्षित होकर श्वेताम्बर साधु हो गये और उसी अवस्थामें भक्तामरकी उन्होंने रचना की।

वि० सं० १३६१ के मेरुतुंगकृत प्रबन्धचिन्तामणि ग्रन्थमें लिखा है कि मयूर और बाण नामक साला-बहनोई पण्डित थे। वे अपनी विद्वतासे एक-दूसरेके साथ स्पर्द्धा करते थे। एक बार बाण पंडित अपनी बहिनसे मिलने गया और उसके घर जाकर रातमें द्वारपर सो गया। उसकी मानवती बहिन रातमें रूठी हुई थी और बहनोई रातभर मनाता रहा। प्रातः होने पर मयूरने कहा—

"हे तन्वंगी! प्रायः सारी रात बीत चली, चन्द्रमा क्षीण-सा हो रहा है, यह प्रदीप मानो निद्राके अधीन होकर झूम रहा है और मानकी सीमा तो प्रणाम करने तक होती है। अहो! तो भी तुम क्रोध नहीं छोड़ रही हो।"

काव्यके तीन पाद बार-बार सुनकर बाणने चौथा चरण बनाकर कहा—'हे चण्डि! स्तनोंके निकटवर्ती होनेसे तुम्हारा हृदय कठिन हो गया है'—

गतप्राया रात्रिः कृशतनुशशी शीर्यत इव
प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णित इव।
प्रणामान्तो मानस्त्यजसि न तथापि क्रुधमहो
कुचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि! कठिनम्॥[४]

---

३ मानतुंगसूरिचरितम्, सिंघी ग्रन्थमाला, १९४० ई०, पृ० ११२-११७।

४ प्रबन्धचिन्तामणि, सिंघी ग्रन्थमाला, १९३३ ई०, पृ० ४४। प्रभावकचरितके कथानकमें बाण और मयूरको ससुर और दामाद लिखा है। प्रबन्धचिन्तामणिके श्लोकके चतुर्थ चरणमें "चण्डि" के स्थानपर "सुभ्रू" पाठ पाया जाता है।

माईके मुखसे चतुर्थ पादको सुनकर वह लज्जित हो गयी और अभिशाप दिया कि तुम कुष्ठी हो जाओ। बाण पतिव्रताके शापसे तत्काल कुष्ठी हो गया। प्रातःकाल शालसे शरीर ढककर वह राजसभामें आया। मयूरने 'वरकोढी'[५] कहकर बाणका स्वागत किया। बाणने देवताराधनका विचार किया और सूर्यके स्तवन द्वारा कुष्ठरोगसे मुक्ति पायी। मयूरने भी अपने हाथ-पैर काट लिये और चण्डिका की—"मा भैक्षीर्विभ्रमम्"—स्तुति द्वारा अपना शरीर स्वस्थकर चमत्कार उपस्थित किया।

इन चमत्कारपूर्ण दृश्योंके घटित होनेके अनन्तर किसी सम्प्रदाय-विद्वेषीने राजासे कहा कि यदि जैन धर्मावलम्बियोंमें कोई ऐसा चमत्कारी हो, तभी जैन यहाँ रहें, अन्यथा उन्हें राज्यसे निर्वासित कर दिया जाय। मानतुंग आचार्यको बुलाकर राजाने कहा—अपने देवताओंके चमत्कार दिखलाओ। वे बोले—हमारे देवता तो वीतरागी हैं, उनके चमत्कार क्या हो सकते है। हाँ, उनके किंकर देवताओंका चमत्कार देखा जा सकता है। इस प्रकार कहकर अपने शरीरको चवालीस हथकड़ियों और बेड़ियोंसे कसवाकर उस नगरके श्रीयुगादिदेवके मन्दिरके पिछले भागमें बैठ गये। भक्तामर-स्तोत्रकी रचना करनेसे उनकी बेड़ियाँ टूट गयीं और मन्दिरको अपने सम्मुख परिवर्तितकर शासनका प्रभाव दिखलाया।[६]

मानतुंगके सम्बन्धमें एक इतिवृत्त श्वेताम्बराचार्य गुणाकर भी उपलब्ध है। उन्होंने भक्तामरस्तोत्रवृत्ति में, जिसकी रचना वि० सं० १४२६ में हुई है, प्रभावकचरितके समान ही मयूर और बाणको श्वसुर एवं जामाता बताया है तथा इनके द्वारा रचित सूर्यशतक और चण्डीशतकका निर्देश किया है। राजाका नाम वृद्धभोज है, जिसकी सभामें मानतुंग उपस्थित हुए थे।

मानतुंग सम्बन्धी इन परस्पर विरोधी आख्यानोंके अध्ययनसे निम्नलिखित तथ्य उपस्थित होते हैं—

(१) मयूर, बाण, कालिदास और माघ आदि प्रसिद्ध कवियों का एकत्र समवाय दिखलानेकी प्रथा १० वीं शतीसे १६ वीं शती तकके साहित्यमें उपलब्ध है। बल्लाल कवि विरचित भोजप्रबन्धमें भी इस प्रकारके अनेक इतिवृत्त हैं।

---

५ 'वरकोढी' प्राकृत पदका पदच्छेद करने पर वरक ओढी—शाल ओढ़कर आये हो तथा अच्छे कुष्ठी बने हो ; ये दोनों अर्थ निकलते हैं।

६ प्रबन्धचिन्तामणि, सिंघी ग्रन्थमाला, १६३३ ई०, पृ० ४४-४५।

(२) मानतुंगको श्वेताम्बर आख्यानों में पहले दिगम्बर और पश्चात् श्वेताम्बर माना गया है। इसी परम्पराके आधारपर दिगम्बर लेखकोंने पहले इन्हें श्वेताम्बर और पश्चात् दिगम्बर लिखा है। यह कल्पना सम्प्रदाय मोहका ही फल है। दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायमें जब परस्पर कटुता उत्पन्न हो गयी और मान्य आचार्योंको अपनी ओर खींचने लगे तो इस प्रकारके विकृत इतिवृत्तोंका साहित्यमें प्रविष्ट होना अनिवार्य हो गया।

(३) मानतुंगने भक्तामरस्तोत्रकी रचना की। दोनों सम्प्रदायोंने अपनी-अपनी मान्यताके अनुसार इसे अपनाया। आरम्भमें इस स्तोत्रमें ४८ काव्य—पद्य थे। प्रत्येक पद्यमें काव्यत्व रहने के कारण ही ४८ पद्योंका ४८ काव्य कहा गया है। इन ४८ पद्योंमेंसे श्वेताम्बर सम्प्रदायने अशोकवृक्ष, सिंहासन, छत्र और चमर इन चार प्रातिहार्यों के निरूपक पद्योंको ग्रहण किया तथा दुन्दुभि, पुष्पवृष्टि, भामण्डल और दिव्यध्वनि इन चार प्रतिहार्यों के विवेचक पद्योंको निकालकर इस स्तोत्रमें ४४ पद्य ही माने। इधर दिगम्बर सम्प्रदायकी कुछ हस्तलिखित प्रतियोंमें श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा निकाले हुए उक्त चार प्रतिहार्यों के बोधक चार नये पद्य और जोड़कर पद्योंकी संख्या ५२ गढ़ ली गयी।[१] वस्तुतः इस स्तोत्र-काव्यमें ४८ ही मूल पद्य हैं।

(४) स्तोत्र-काव्योंका महत्त्व दिखलानेके लिए उनके साथ चमत्कारपूर्ण आख्यानोंकी योजना की गयी है। मयूर, पुष्पदन्त, बाण प्रभृति कवियोंके स्तोत्रोंके पीछे कोई-न-कोई चमत्कार पूर्ण आख्यान वर्तमान है। भगवद्भक्ति चाहे वह वीतरागीकी हो या सरागी की, अभीष्ट पूर्ति करती है। पूजा-पद्धतिके आरम्भ होनेके पूर्व स्तोत्रोंकी परम्परा ही भक्तिके क्षेत्रमें विद्यमान थी। यही कारण है कि भक्तामर, एकीभाव और कल्याणमन्दिर प्रभृति जैन स्तोत्रोंके साथ भी चमत्कारपूर्ण आख्यान जुड़े हुए हैं। इन आख्यानोंमें

---

[१] अभी एक भक्तामर दि० जैन समाज, भागलपुर (वी० सं० २४६०) से प्रकाशित हुआ है; जिसमें वृष्टिर्दिवः सुमनसां परितः पपात (३५); दुष्णामनुष्यसहस्रामपि कोटिसंख्यां (३७); देव त्वदीयसकलामलकेवलाव (३६) पद्य अधिक मुद्रित हैं।

श्वेताम्बर मान्यता का एक भक्तामर हमें मिला है; जिसमें गम्भीरताररव (३२); मन्दारसुन्दरनमेरुसुपारिजात (३३), शुम्भत्प्रभावलय (३४), स्वर्गापवर्ग (३५) पद्य मुद्रित नहीं हैं। ३१ वें पद्यके पश्चात् ३६ वें पद्य का पाठ ३२ वें पद्यके रूपमें दिया गया है।

ऐतिहासिक तथ्य हो या न हो, पर इतना सत्य है कि एकाग्रतापूर्वक स्तोत्र-पाठ करनेसे आत्म-शुद्धि उत्पन्न होती है और यही आत्मिक शुद्धि अभीष्टकी सिद्धिमें सहायक होती है।

समय-विचार

मानतुंगके समय-निर्णयपर उक्त विरोधी आख्यानोंसे इतना प्रकाश अवश्य पड़ता है कि वे हर्ष अथवा भोजके समकालीन हैं। अतः सर्वप्रथम भोजकी समकालीनता पर विचार किया जाता है। इतिहासमें बताया गया है कि सीमक हर्षके बाद उसका यशस्वी पुत्र मुञ्ज उपनाम वाक्पति वि० सं० १०३१ (ई० ९७४) में मालवाकी गद्दीपर आसीन हुआ। वाक्पति मुञ्जने लाट, कर्णाटक, चोल और केरलके साथ युद्ध किया था। यह योद्धा तो था ही, साथ ही कला और साहित्यका संरक्षक भी। उसने धारा नगरीमें अनेक तालाब खुदवाये थे। उसकी सभामें पद्मगुप्त, धनञ्जय, धनिक और हलायुध प्रभृति ख्यातिनाम साहित्यिक रहते थे। मुञ्जके अनन्तर सिन्धराज या नवसाहसाङ्क सिंहासनासीन हुआ। सिन्धराजके अल्पकालीन शासनके पश्चात् उसका पुत्र भोज परमारोंकी गद्दीपर बैठा। इस राजकुलका यह सर्वशक्तिमान और यशस्वी नृपति था। इसके राज्यासीन होनेका समय ई० सन् १००८ है। भोजने दक्षिणी राजाओंके साथ तो युद्ध किया ही, पर तुरुष्क एवं गुजरातके कीर्त्तिराजके साथ भी युद्ध किया। मेरुतुंगके अनुसार भोजने[८] पचपन वर्ष, सात मास, तीन दिन राज्य किया था। भोज विद्या-रसिक था। उसके द्वारा रचित लगभग एक दर्जन ग्रन्थ हैं। इन्हीं भोजके समयमें आचार्य प्रभाचन्द्रने अपना प्रमेयकमलमार्त्तण्ड लिखा है—

"श्रीभोजराज्ये श्रीमद्धारानिवासिना परापरपरमेष्ठिपदप्रणामार्जितामलपुण्य-निराकृतनिखिलमलकलङ्केन श्रीमत्प्रभाचन्द्रपण्डितेन निखिलप्रमाणप्रमेयस्वरूपोद्-द्योतपरीक्षामुखपदमिदं विवृतमिति।"[९]

पं० श्री कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीने प्रभाचन्द्रका समय ई० सन् १०२० के लगभग माना है। अतः भोजका राज्यकाल ११वीं शताब्दी है।

आचार्य कवि मानतुंगके भक्तामर स्तोत्रकी शैली मयूर और बाणकी

---

८ पञ्चाशत्पञ्चवर्षाणि मासाः सप्त दिनत्रयम्।
भोक्तव्यं भोजराजेन सगौडं दक्षिणापथम्॥
—प्रबन्धचिन्तामणि, सिंघी ग्रन्थमाला, १९३३, पृ० २९

९ प्रमेयकमलमार्त्तण्ड, ग्रन्थान्त-प्रशस्ति।

स्तोत्र-शैली के समान है। अतएव भोजके राज्यमें मानतुंगने अपने स्तोत्रकी रचना नहीं की है। अतः भोजके राज्य-कालमें बाण और मयूरके साथ मानतुंगका साहचर्य कराना संभव नहीं है।

संस्कृत साहित्यके प्रसिद्ध इतिहास-विद्वान् डॉ० ए० बी० कीथने भक्तामर-कथाके संबंधमें अनुमान किया है कि कोठरियोंके ताले या पाशबद्धता संसार-बंधनका रूपक है। उनका कथन है—

"Perhaps the origin of the legend is simply the reference in his poem to the power of the Jina to save those in fetters, doubtless metaphorically applied to the bonds holding men to carnal life.[१०]

अर्थात्—सम्भवतः इस कथाका मूल केवल उनकी कवितामें पाशोंसे आबद्धजनोंके बचानेके लिए जिनदेवकी शक्तिके उल्लेखमें है, जो निश्चय ही मनुष्योंको सांसारिक जीवनके बाँधने वाले पाशोंके लिए रूपक है।

डॉ० कीथने मानतुंगको बाणके समकालीन अनुमान किया है।[११] सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझाने अपने 'सिरोहीका इतिहास' नामक ग्रन्थमें मानतुंगका समय हर्षकालीन माना है। श्रीहर्षका राज्याभिषेक ई० सन् ६०७ (वि० सं० ६६४) में हुआ।

भक्तामर-स्तोत्रके अन्तरंग परीक्षणसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह स्तोत्र कल्याणमंदिरका पूर्ववर्ती है। कल्याणमन्दिरमें कल्पनाकी ऊँची उड़ानें है वैसी इस स्तोत्रमें नहीं हैं। अतः भक्तामरके बाद ही कल्याणमन्दिरकी रचना हुई होगी। अतः भक्तामरकी कल्पनाओंका पल्लवन एवं उन कल्पनाओंमें कुछ नवीनताओंका समावेश चमत्कारपूर्ण शैलीमें पाया जाता है। भक्तामरमें कहा है कि सूर्यकी बात ही क्या, उसकी प्रभा ही तालाबोंमें कमलोंको विकसित कर देती है। उसी प्रकार हे प्रभो! आपका स्तोत्र तो दूर ही रहे पर आपकी नाम-कथा ही समस्त पापोंको दूर कर देती है। यथा—

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि॥

—भक्तामरस्तोत्र, पद्य ६

[१०-११] A History of Sanskrit Literature, 1941, pp. 214-115.

कल्याणमन्दिरमें उपर्युक्त कल्पनाको बीज रूपमें स्वीकार कर बताया गया है कि जब निदाघमें कमलसे युक्त तालाबकी सरस वायु ही तीव्र आतापसे संतप्त पथिकोंकी गर्मीसे रक्षा करती है, तब जलाशयकी बात ही क्या ! उसी प्रकार जब आपका नाम ही संसार-तापको दूर कर सकता है, तब आपके स्तोत्रके सामर्थ्यका क्या कहना !

आस्तामचिन्त्यमहिमा जिन संस्तवस्ते,
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति ।
तीव्रातपोपहतपान्थजनान् निदाघे,
प्रीणाति पद्मसरसः सरसोऽनिलोऽपि ।।

—कल्याणमन्दिर, पद्य ७

भक्तामर-स्तोत्रकी गुणगान-महत्त्व-सूचक कल्पनाका प्रभाव और विस्तार भी कल्याणमन्दिरमें पाया जाता है । भक्तामर स्तोत्रमें बताया गया है कि प्रभो ! संग्राममें आपके नामका स्मरण करनेसे बलवान राजाओंका भी युद्ध करते हुए घोड़ों और हाथियोंकी भयानक गर्जनासे युक्त सैन्यदल उसी प्रकार नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है, जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेसे अन्धकार नष्ट हो जाता है । यथा—

वल्गत्तुरङ्गगजगर्जितभीमनादमाजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम्
उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं त्वत्कीर्त्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ।।

—भक्तामरस्तोत्र, पद्य ४२

उपर्युक्त कल्पनाका रूपान्तर कल्याणमन्दिरके ३२वें पद्यमें उसी प्रकार पाया जाता है जिस प्रकार जिनसेनके पार्श्वाभ्युदयमें मेघदूतके पद-सन्निवेशके रहनेपर भी कल्पनाओंमें रूपान्तर । यथा—

यद्गर्जदूर्जितघनौघमदभ्रभीम—
भ्रश्यत्तडिन्मुसलमांसलघोरधारम्
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारि वध्रे
तेनैव तस्य जिन ! दुस्तरवारिकृत्यम् ।।

— कल्याणमन्दिर स्तोत्र, पद्य ३२

इसी प्रकार भक्तामर-स्तोत्रके 'नित्योऽदयं दलितमोहमहान्धकारं' (पद्य १८) का कल्याणमन्दिरके 'नूनं न मोहतिमिरावृतलोचनेन' (पद्य ३७) पर और 'त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांसम्' (पद्य २३) का 'त्वां योगिनो जिन ! सदा परमात्मरूपम्' (पद्य १४) पर स्पष्ट प्रभाव दिखलाई पड़ता है ।

कोई भी निष्पक्ष समालोचक उपर्युक्त विश्लेषणके प्रभावमें इस स्वीकृतिका विरोध नहीं कर सकता है कि भक्तामरका शब्दों, पदों और कल्पनाओंमें पर्याप्त साम्य है तथा भक्तामरकी कल्पनाओं और पदावलियोंका विस्तार कल्याण-मन्दिरमें हुआ है।

भक्तामर स्तोत्रके आरम्भ करनेकी शैली पुष्पदन्तके शिवमहिम्न-स्तोत्रसे प्रायः मिलती है। प्रातिहार्य एवं वैभव वर्णनमें भक्तामर पर पात्रकेसरीस्तोत्रका भी प्रभाव परिलक्षित होता है। अतएव मानतुंगका समय ७वीं शती है। यह शती मयूर, बाणभट्ट आदिके चमत्कारी स्तोत्रोंकी रचनाके लिए प्रसिद्ध भी है।

भारतका सांस्कृतिक इतिहास इस बातका साक्षी है कि ई० सन् की ५वीं शताब्दीमें मन्त्र-तन्त्रका प्रचार विशेष रूपसे हुआ है। ५वीं शताब्दीमें महायान और कापालिकोंने बड़े-बड़े चमत्कारकी बातें कहना आरम्भ की। अतएव यह क्लिष्ट कल्पना न होगी कि उस चमत्कारके युगमें आचार्य मानतुंगने भी भक्तामर-स्तोत्रकी रचना की हो। इस स्तोत्रको उन्होंने दावाग्नि, भयंकर सर्प, राज-सेवाएँ, भयानक समुद्र आदिके भयोंसे रक्षा करनेवाला कहा है। जलोदर एवं कुष्ठ जैसी व्याधियाँ भी इस स्तोत्रके प्रभावसे नष्ट होनेकी बात कही गयी है। अतः स्पष्ट है कि चमत्कारके युगमें वीतरागी आदिजिनका महत्त्व और चमत्कार कविने युगके प्रभावसे ही दिखलाया है। अतएव मानतुंगका समय ७वीं शताब्दीका उत्तरार्द्ध है।

मानतुंगने ४८ पद्य-प्रमाण भक्तामर-स्तोत्रकी रचना की है। यह समस्त स्तोत्र वसन्ततिलका छन्दमें लिखा गया है। इसमें आदितीर्थंकर ऋषभनाथकी स्तुति की गई है। पर इस स्तोत्रकी यह विशेषता है कि इसे किसी भी तीर्थंकरपर घटित किया जा सकता है। प्रत्येक पद्यमें उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकारका समावेश किया गया है। इसका भाषासौष्ठव और भावगाम्भीर्य प्रसिद्ध है। कवि अपनी नम्रता दिखलाता हुआ कहता है कि हे प्रभो! अल्पज्ञ और बहुश्रुतज्ञ विद्वानों द्वारा हँसीके पात्र होनेपर भी तुम्हारी भक्ति ही मुझे मुखर बनाती है। वसन्तमें कोकिल स्वयं नहीं बोलना चाहती, प्रत्युत मंजरी ही उसे बलात् कूजनेका निमन्त्रण देती है। यथा—

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति
तच्चारुचाम्रकलिकानिकरैकहेतुः॥

—भक्तामर स्तोत्र, पद्य ६

अतिशयोक्ति अलंकारमें आराध्यके गुणोंका वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि हे भगवन् ! आप एक अद्भुत जगत्-प्रकाशी दीपक हैं, जिसमें न तैल है न बाती, और न धूम। पर्वतोंको कम्पित करनेवाले वायुके झोके भी इस दीपक तक पहुँच नहीं सकते हैं। तो भी जगत्में प्रकाश फैलता है। यथा—

निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः॥

—भक्तामरस्तोत्र, पद्य १६

इस पद्यमें आदिजिनको सर्वोत्कृष्ट विचित्र दीपक कहकर कविने अतिशयोक्ति अलंकार का समावेश किया है। अतिशयोक्ति अलंकारके उदाहरण इस स्तोत्रमें और भी कई आये हैं। पर १७वें पद्यकी अतिशयोक्ति बहुत ही सुन्दर है। कवि कहता है कि हे भगवन् ! आपकी महिमा सूर्यसे भी बढ़कर है क्योंकि आप कभी भी अस्त नहीं होते, न राहुगम्य हैं, न आपका महान् प्रभाव मेघोंसे अवरुद्ध होता है एवं आप समस्त लोकोंके स्वरूपको स्पष्ट रूपसे अवगत करते हैं। यथा—

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगान्ति।
नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः,
सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र लोके॥

—भक्तामरस्तोत्र, पद्य १७

यहाँ भगवान्‌को अद्भुत सूर्यके रूपमें वर्णित कर अतिशयोक्तिका चमत्कार दिखलाया गया है।

कवि आदिजिनको बुद्ध, शंकर, धाता और पुरुषोत्तम सिद्ध करता हुआ कहता है—

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधा-
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात्।
धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधानात
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि॥

—भक्तामरस्तोत्र, पद्य ३५

इस प्रकार मानतुंगमें काव्य-प्रतिभा और उनके इस स्तोत्र-काव्यमें सभी काव्य गुण समवेत हैं।

पार्श्वनाथ जन्मभूमि मंदिर, वाराणसी का पुरातत्त्वीय वैभव

(उत्खनन में उपलब्ध सामग्री के आधार पर)

प्रो० सागरमल जैन

जैन परम्परा में काशी जनपद और उसकी राजधानी वाराणसी का महत्वपूर्ण स्थान है। यह माना जाता है कि इस नगर में चार तीर्थंकरों— सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, श्रेयांस और पार्श्व का जन्म हुआ था।[1] इनमें से प्रथम तीन तो प्रागैतिहासिक काल के और पार्श्व ऐतिहासिक युग के माने जाते हैं। उनका काल लगभग ई० पूर्व आठवीं शताब्दी माना जाता है।

जैन आगम और आगमिक व्याख्या साहित्य में पार्श्वनाथ की जन्म कल्याणक-भूमि के रूप में वाराणसी नगरी का उल्लेख है।[2] पुरातात्त्विक अन्वेषण एवं शोध के आधार पर ई० पूर्व आठवीं शताब्दी में वाराणसी नगरी का अस्तित्व प्रमाणित है, अतः इसे पार्श्व की जन्म-स्थली के रूप में स्वीकार करने में पुरातात्त्विक दृष्टि से कोई बाधा नहीं है। अब हमारे सामने मुख्य प्रश्न यह है कि क्या यहाँ पार्श्व की जन्मभूमि पर किसी स्मारक-मन्दिर आदि का निर्माण हुआ ? और यदि हुआ तो कब हुआ ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए जैन साहित्य और यहाँ से उपलब्ध पुरातात्त्विक साक्ष्यों का अध्ययन आवश्यक है।

जैन आगमिक व्याख्या साहित्य में वाराणसी नगरी का विस्तारपूर्वक उल्लेख है। प्रज्ञापना में काशी की एक जनपद के रूप में गणना करते हुए वाराणसी को उसकी राजधानी बताया गया है। जैन ग्रन्थों में काशी की सीमा इस प्रकार निर्धारित की गयी है—पूर्व में मगध, पश्चिम में वत्स, उत्तर में विदेह और दक्षिण में कोशल। बौद्ध ग्रन्थों में काशी के उत्तर में कोशल जनपद स्थित बतलाया गया है।

ज्ञाताधर्मकथा के अनुसार वाराणसी नगरी के समीप गंगा नदी उत्तर-पूर्व दिशा में बहती है। आज भी गंगा नदी वाराणसी नगरी के समीप उत्तर-पूर्व दिशा में बहती है। ज्ञाताधर्मकथा में एक मृत-गंगा-द्रह की चर्चा है।

ज्ञाताधर्मकथा के अतिरिक्त उत्तराध्ययनचूर्णी में भी मृतगंगा (मयंग) का

---

[1] आवश्यकनियुक्ति, ३८२-८४

[2] कल्पसूत्र, १४८

उल्लेख है ।[३] इससे ज्ञात होता है कि इस नगर के समीप गंगा की कोई एक अन्य धारा भी थी । किन्तु आगे चलकर यह धारा क्षीण होती गई और मुख्य धारा से विच्छिन्न होकर उसने अनेक द्रहों का रूप ले लिया । जिनमें वर्षा का पानी जमा हो जाता होगा । गंगा की इस मृतधारा की एवं उससे निर्मित द्रह की सूचना जैन साहित्य को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं है ।

वाराणसी नगरी के भौगोलिक मानचित्र एवं टोपोग्राफी से प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल में गंगा की एक धारा वर्तमान अस्सी नाले की ओर से होती हुई, दुर्गाकुण्ड, भेलूपुर, रेवड़ीतालाब आदि क्षेत्रों को स्पर्श करते हुए नई सड़क, बेनिया के रास्ते से होकर संस्कृत विश्वविद्यालय के निकट वरुणा में मिल जाती थी । आज भी बाढ़ अथवा वर्षा में इन क्षेत्रों में विशाल जलराशि एकत्र हो एक विशाल द्रह का रूप ले लेती है । इन क्षेत्रों में आज भी कई पक्के सरोवर हैं, सम्भवतः इनका निर्माण यहाँ के आवासीय प्रक्षेत्रों को उक्त जल-जमाव की समस्या से मुक्त रखने के उद्देश्य से ही किया गया होगा ।

प्राकृत शब्द 'मयंग' का संस्कृत रूप 'मातंग' भी हो सकता है, ऐसी स्थिति में मयंगतीरदहे का अर्थ होगा—गंगा के किनारे मातंगों की बस्ती के निकट स्थित तालाब । सम्भव है कि वर्तमान हरिश्चन्द्र घाट के समीप मातंगों (चाण्डालों) की बस्ती रही हो और उस बस्ती के निकट वर्तमान रवीन्द्रपुरी तालाब के रूप में रही हो । उत्तराध्ययनचूर्णि में उस द्रह के समीप मातंगों की बस्ती होने की स्पष्ट रूप से चर्चा है ।

जैन आगमों में वाराणसी की बाह्य उपत्यकाओं में अनेक उद्यानों एवं वन खण्डों के भी उल्लेख हैं । कल्पसूत्र में यहाँ के आश्रमपदउद्यान का,[४]

---

[३] (क) तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी नाम नगरी होत्था, वन्नओ । तीसे णं बाणारसीए नयरीए बहिया उत्तरपुरच्छि में दिसिभागे गंगाए महानदीए मयंगतीरद्दहे नामं दहे होत्था ।

—ज्ञाताधर्मकथा ४.२

(ख) उत्तराध्ययनचूर्णि, अध्याय १२, पृ० ३५५

[४] कल्पसूत्र, १५३

उपासकदशांग[5] और आवश्यकनिर्युक्ति[6] में कोष्ठकवन का, निरयावलिका[7] में अम्बशाल वन का, अन्तकृद्दशा[8] में काम महावन का और उत्तराध्ययनचूर्णि[9] में तिन्दुकवन का उल्लेख मिलता है।

कुछ वर्षों पूर्व तक के मानचित्रों में भी वाराणसी के निकट भद्रेश्वरवन, हरिकेशवन, आनन्दवन, अशोकवन, ध्रुववन और महावन होने के निर्देश उपलब्ध हैं।[10] इसमें हरिकेशवन और काममहावन के नाम जैन परम्परा की दृष्टि से विशेष रूप से विचारणीय हैं। हो सकता है कि उत्तराध्ययन में उल्लिखित वाराणसी के हरिकेशबल नामक श्वपाक महामुनि के नाम के आधार पर ही इस वन का नामकरण हुआ हो। इस वन की स्थिति वर्तमान रेवड़ी-तालाब के निकट बतलायी गयी है। यह क्षेत्र वर्तमान भेलुपुर मन्दिर का निकटवर्ती है। हो सकता है कि ये हरिकेशबल पार्श्वनाथ की परम्परा से सम्बद्ध रहे हों और यह क्षेत्र उनका निवास स्थल या साधना स्थल रहा हो। इसी प्रकार महावन सम्भवतः अन्तकृतदशा में उल्लिखित काममहावन हो। औपपातिकसूत्र[11] से गंगा के किनारे बसने वाले अनेक प्रकार के तापसों की भी सूचना मिलती है।

किन्तु ये सब आगमिक उल्लेख वाराणसी में पार्श्वनाथ की स्मृति में स्थापित किसी जिनालय की चर्चा के सम्बन्ध में मौन हैं। यद्यपि तिन्दुक-वृक्षवासी तिन्दुक यक्ष के एक यक्षायतन का उल्लेख उत्तराध्ययन चूर्णि में है।[12] वटगोहली—पहाड़पुर (बंगाल) से प्राप्त ई० सन् ४१६ के एक ताम्रपत्र में काशी के पंचस्तूपान्वय का उल्लेख आया है।[13] यह पंचस्तूपान्वय जैन परम्परा का एक प्रसिद्ध उपसम्प्रदाय रहा है जो लगभग दसवीं शताब्दी तक अस्तित्ववान था। यह भी स्पष्ट है कि पंचस्तूपान्वय का सम्बन्ध पाँच जैन

---

5 उपासकदशांग, ३।१२४,

6 आवश्यकनिर्युक्ति, १३०२

7 निरयावलि, ३।३

8 अन्तकृद्दशांग, ६।१६

9 उत्तराध्ययनचूर्णि, अध्याय १२, पृ० २०२

10 देखें Varanasi through the Ages (युगों-युगों में काशी), पृ० ८

11 औपपातिक सूत्र, ७४

12 उत्तराध्ययनचूर्णि, अध्याय १२, पृ० २०२

13 Epigraphia, Indica, Vol. XX (1929-30), p. 61-62

स्तूपों से ही रहा होगा। किन्तु ये पञ्चस्तूप कहाँ थे इसका कोई साहित्यिक उल्लेख नहीं मिलता है। सम्भव है कि मथुरा के समान वाराणसी आदि क्षेत्रों में भी पार्श्व की स्मृति में स्तूपों का निर्माण हुआ हो और उन्हीं स्तूपों की अर्चा से सम्बन्धित होने के कारण इस सम्प्रदाय का यह नामकरण हुआ होगा। किन्तु वाराणसी में भी जैन स्तूप निर्मित हुये थे इसके अभी तक कोई भी पुरातात्त्विक संकेत नहीं मिले हैं। जिनप्रभसूरी धर्मेक्षास्तूप का वर्णन करते हैं किन्तु उसे वे बौद्ध स्तूप ही मानते हैं।[१४] किन्तु ऐसा विश्वास अवश्य होता है कि सारनाथ स्थित बौद्ध स्तूप के समान ही यहाँ जैन स्तूपों का निर्माण अवश्य हुआ है। हो सकता है कि पार्श्वनाथ जन्म स्थान मन्दिर के स्थल पर पहले कोई स्तूप रहा हो और उसके पश्चात् ६-७वीं शताब्दी में वहाँ मन्दिर बना हो—क्योंकि नींव के उत्खनन में कुछ प्राचीन ईंटों के टुकड़े मिले हैं।

'काशिक पंचस्तूपनिकाय'—यह नाम स्पष्ट रूप से यह संकेत करता है कि यहाँ जैन स्तूप रहे होंगे, तथापि इस सम्बन्ध में हमें अभी तक कोई पुरातात्त्विक या साहित्यिक प्रमाण नहीं मिले हैं।

राजघाट (वाराणसी) से उपलब्ध कुछ प्राचीन जैन प्रतिमाएँ

वाराणसी में राजघाट के उत्खनन से कुछ जैन प्रतिमाएँ भी मिली हैं जो लगभग छठीं शताब्दी से १०वीं शताब्दी के बीच की हैं। उनमें ईसा की लगभग छठीं शताब्दी की भगवान् महावीर की प्रतिमा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह प्रतिमा भारत कला भवन (क्रमांक—१६१) में संरक्षित है। राजघाट से ही प्राप्त नेमिनाथ की मूर्ति भी लगभग ७वीं शताब्दी की मानी जाती है। यह प्रतिमा भी भारत कला भवन में संरक्षित है। इसी प्रकार अजितनाथ की ७वीं शती की एक प्रतिमा जो वाराणसी से ही प्राप्त हुई है, आज राजकीय संग्रहालय, लखनऊ में संरक्षित है। पार्श्वनाथ की एक अन्य मूर्ति जो राजघाट से प्राप्त हुई थी, यह ८वीं शती की है और राजकीय संग्रहालय, लखनऊ में संरक्षित है, किन्तु ये सभी प्रतिमायें वाराणसी के उत्तर-पूर्वी छोर राजघाट से मिली हैं।[१५]

---

१४ मारुतिनंदन तिवारी, 'भारत कला भवन (वाराणसी) का जैन पुरातत्त्व' अनेकांत, वर्ष २४ अंक २, जून १९७१, पृ० ५१-५८

१५ विविधतीर्थकल्प (कल्पप्रदीप), वाराणसीनगरीकल्प

भेलूपुर स्थित पार्श्वनाथ जन्मस्थान मन्दिर

वर्तमान में वाराणसी और उसके निकटवर्ती क्षेत्रों में छोटे-बड़े २० से अधिक जैन मन्दिर हैं, किन्तु इनमें कोई भी मन्दिर पुरातात्त्विक दृष्टिसे ३०० वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं है। वर्तमान में भेलूपुर में जहाँ पार्श्वनाथ का जन्मस्थान मन्दिर बना हुआ है, उसकी भी ऐतिहासिकता एवं पुरातात्त्विक महत्व के सन्दर्भ में यहाँ निर्मित हो रहे दिगम्बर जैन मन्दिर की नींव के उत्खनन के पूर्व हमें विशेष कुछ भी ज्ञात नहीं था। क्योंकि वर्तमान श्वेताम्बर और दिगम्बर मन्दिरों में कुछ जिन प्रतिमाओं को छोड़कर १७-१८वीं शती के पूर्व के कोई अवशेष उपलब्ध नहीं है।

साहित्यिक साक्ष्यों की दृष्टि से १४वीं शताब्दी में जिनप्रभसूरि एक ओर देव वाराणसी में स्थित विश्वनाथ मन्दिर में २४ तीर्थंकरों के एक आयाग-पट्ट होने की सूचना देते हैं तो दूसरी ओर वे यह भी कहते हैं कि यहाँ दन्तखात तालाब के किनारे पार्श्वनाथ का जन्मस्थान मन्दिर है। जिनप्रभसूरि ने तालाब के किनारे जिस मन्दिर की चर्चा की है वह निश्चित रूप से भेलूपुर क्षेत्र में स्थित पार्श्वनाथ का जन्मस्थान मन्दिर ही है। क्योंकि कुछ वर्ष पूर्व तक भी इसके आस-पास अनेक विशाल तालाब थे, जो अब छोटे रूप में नाम मात्र के रह गए हैं, जैसे—रेवड़ी तालाब, मानसरोवर आदि। ये गंगा की उसी मृतधारा के अवशेष माने जा सकते है, जिसका उल्लेख हमें ज्ञाताधर्मकथा में मिलता है। अभी तक हम कल्पप्रदीप के साहित्यिक प्रमाण से यह कह सकते थे कि जिनप्रभसूरि ने पार्श्वनाथ के जिस मन्दिर के होने का उल्लेख किया है, वह भेलूपुर का पार्श्वनाथ जैन मन्दिर ही रहा होगा। किन्तु सौभाग्य से हाल ही में उस स्थल से कुछ ऐसे पुरातात्त्विक साक्ष्य उपलब्ध हो सके हैं, जिनके आधार पर जिनप्रभ द्वारा उल्लिखित इस पार्श्वनाथ के जन्मस्थान मन्दिर की प्राचीनता को सुनिश्चित किया जा सकता है।

इस क्षेत्र का जो भेलूपुर नामकरण हुआ है वह भी अर्थपूर्ण है। संस्कृत कोश में 'भेलु' का अर्थ 'बुद्ध' दिया गया है।[१६] प्राचीन जैन आगमों में जिन या तीर्थंकर के लिए 'बुद्ध' शब्द का प्रयोग भी प्रचुरता से हुआ है। *उत्तराध्ययनसूत्र के १८वें और ३६वें अध्याय में तीर्थंकरों के लिए 'बुद्ध' शब्द*

---

१६ Monier Williams, Sanskrit-English Dictionary, p. 766

का प्रयोग हुआ है।[१७] ऐसा लगता है कि पार्श्व से सम्बन्धित होने के कारण ही इस क्षेत्र को भेलूपुर (बुद्धपुर) ऐसा नाम मिला होगा।

भेलूपुर पार्श्वनाथ मन्दिर की प्राचीनता का प्रश्न

यहाँ जो श्वेताम्बर-दिगम्बर मन्दिर स्थित हैं, वे १७वीं-१८वीं शती से प्राचीन नहीं हैं। यद्यपि दिगम्बर मन्दिर में तीन-चार प्रतिमाओं को छोड़कर कोई भी १५वीं शती से पूर्व की नहीं है। उसमें भी एक भव्य प्रतिमा चन्द्रावती से लाई गई है। उस पर विभिन्न कालों के तीन लेख हैं तथा एक लेख में 'चन्द्रावत्यां' ऐसा उल्लेख है। साहित्यिक साक्ष्यों से ऐसी सूचना मिलती है कि यह प्रतिमा चन्द्रावती के प्राचीन चन्द्रमाधव के मन्दिर में स्थित थी।

यद्यपि दिगम्बर समाज द्वारा पूर्व मन्दिर के स्थान पर नये मन्दिर का निर्माण हो रहा है किन्तु श्वेताम्बर जिनालय आज भी उसी स्थिति में है। जन्मस्थान के इन मन्दिर के स्वामित्व को लेकर लगभग दो शताब्दियों से दोनों सम्प्रदायों में विवाद चल रहा था, जिसके कारण इन मन्दिरों का नवनिर्माण संभव नहीं हो पा रहा था। संयोग से लगभग ३ वर्ष पूर्व दोनों सम्प्रदायों ने उदारता का परिचय देकर विवाद के कुछ मुद्दों पर लेखक के निर्णय को मान्य करके इस विवाद का निराकरण किया और भूमि, मंदिर और प्रतिमाओं आदि का विभाजन कर लिया। इसके पश्चात् दिगम्बर समाज ने अपने क्षेत्र में विशाल धर्मशाला के साथ नवीन मंदिर बनाने का कार्य प्रारम्भ किया। संयोग से नवीन जिनालय के लिए नींव की खुदाई में कुछ ऐसी प्राचीन जिन मूर्त्तियाँ और पुरातात्त्विक महत्त्व की सामग्री प्राप्त हुई है जो इस मंदिर-स्थल की प्राचीनता को सुनिश्चित करने में अत्यन्त सहायक है। प्राप्त सूचनाओं के अनुसार नींव की खुदाई के समय पूर्व-दक्षिण दिशा में जो सामग्री उपलब्ध हो सकी है, उसका विवरण यहाँ प्रस्तुत है।

यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि मंदिर निर्माण की शीघ्रता में उस स्थल की वैज्ञानिक दृष्टि से समुचित खुदाई नहीं हो पायी और बहुत कुछ सामग्री भूगर्भ में ही रह गयी।

प्राचीन मूलनायक प्रतिमा

निर्माणाधीन दिगम्बर मंदिर की दक्षिण दिशा की नींव से पार्श्वनाथ की एक खण्डित प्रतिमा मिली है — यह प्रतिमा पद्मासन में स्थित है। प्रतिमा

---

१७ उत्तराध्ययन, १८।२४ ; ३६ २६८

की पादपीठ में सर्प की कुण्डली है और वही सर्प पार्श्वभाग में उस कुण्डली से वलयाकार में ऊपर उठता हुआ प्रतिमा के मस्तक पर सप्तफणों का छत्र बनाये है। अपने मूल आकार में यह पद्मासन-प्रतिमा लगभग ५ फुट की रही होगी किन्तु वर्तमान में गर्दन के ऊपरी भाग और छत्र के टूट जाने से इसकी ऊँचाई ३६ इंच और चौड़ाई ३१ इंच है। प्रतिमा अत्यन्त भव्य और सुडौल रही है। सम्भवतः प्राचीन मंदिर में यही मूलनायक की प्रतिमा रही है। प्रो० मधुसूदन ढाकी, प्रो० अवध किशोर नारायण और प्रो० कृष्णदेव ने इस प्रतिमा को लगभग ५ वीं-६ ठीं शताब्दी का बताया है।

अन्य प्रतिमाएँ

उपरोक्त प्रतिमा के अतिरिक्त यहाँ से एक स्तम्भ का शिरोभाग भी प्राप्त हुआ है। इसके चारों ओर महावीर पार्श्व, ऋषभ और सम्भवतः अरिष्ट-नेमि की प्रतिमाएँ हैं। ये प्रतिमाएँ अत्यन्त सौम्य हैं। इनकी शैली के आधार पर उक्त विद्वानों ने इन्हें उत्तर कुषाण और पूर्व गुप्त काल अर्थात् लगभग चतुर्थ शती ई० सन् का बतलाया है। सभी प्रतिमाएँ ७ इंच चौड़ी और लगभग ६ इंच ऊँची हैं। एक अन्य प्रतिमा जो लगभग ऊँचाई में २२ इंच की रही होगी, खण्डित अवस्था में प्राप्त हुई। वर्तमान में वक्ष के ऊपर का भाग अनुपलब्ध है। यह प्रतिमा भी उत्तर गुप्तकाल की प्रतीत होती है। वर्तमान में अवशिष्ट भाग १२ इंच है। प्रतिमा के नीचे अस्पष्ट मृग का चिह्न होने से यह प्रतिमा शान्तिनाथ की होगी, ऐसा माना जा सकता है। परिकर से युक्त एक अन्य खड्गासन प्रतिमा भी यहीं से प्राप्त हुई है। इस प्रतिमा के चरणों के आस-पास स्त्री और पुरुष वंदन की मुद्रा में उत्कीर्ण हैं। परिकर में चार जिन खड्गासन में है। शिरो-भाग के ऊपर एक जिन प्रतिमा पद्मासन में है। मुखमण्डल के दोनों ओर हाथी उत्कीर्ण हैं। इस प्रतिमाफलक की ऊँचाई लगभग पादपीठ और छत्र सहित २ फीट है। मुख्य प्रतिमा १६ इंच ऊँची और अत्यन्त सुन्दर है। विद्वानों ने इस प्रतिमा का काल लगभग १० वीं शताब्दी माना है।

प्राप्त अभिलेख

इन प्रतिमाओं के अतिरिक्त पार्श्वनाथ की खण्डित फणावली भी यहाँ से उपलब्ध है जो २६ इंच की है। फणावली के ऊपर कमठ उत्कीर्ण है। एक स्तम्भ का शिरो भाग भी यहाँ से प्राप्त हुआ है, जो लेख युक्त है, लेख अत्यन्त संक्षिप्त है और मात्र ६" × ३" में खुदा है। प्रो० कृष्णदेवजी एवं

डा० टी० पी वर्मा ने इस के कुछ अंश को पढ़ा है, तदनुसार "ॐ (महा) राज भाजदेव···कारितं" ऐसा उल्लेख है, शेष अंश पढ़ा नहीं जा सका है। अक्षरों की बनावट के आधार पर लेख की काल सीमा ९ वीं-१० वीं शताब्दी अनुमानित किया गया है।

हमारे अनुरोध पर प्रो० माहेश्वरी प्रसादजी चौबे ने इसे पढ़ने का प्रयास किया है। उनके अनुसार लेख का पाठ निम्न है—

१ ॐ [महा] राज श्री भाजदेव मनि

२ क

३ ह श्री कच्छ म (वी !)···(र्जं !) कारितं

प्रस्तुत शिलालेख में महाराज श्री भाजदेव का उल्लेख है, किन्तु यह 'भाजदेव' पाठ शुद्ध नहीं है, मेरी दृष्टि में इसे भोजदेव होना चाहिए। यदपि हम 'भोजदेव' ऐसा शुद्ध पाठ मानें तो यह प्रश्न उपस्थित होता है कि विवेच्य 'महाराज श्री भोजदेव' कौन थे? यह सुनिश्चित है कि इस अभिलेख की लिपि ९ वीं-१० वीं शताब्दी की है। अतः ये भोजदेव वही हो सकते हैं जिनका शासन ९वीं-१० वीं शताब्दी में वाराणसी पर रहा हो। इस संदर्भ में मैंने सर्वप्रथम जैन स्रोतों से खोज करने का प्रयत्न किया है।

"Political History of Northern India from Jain Sources" में मुझे भोज नामक चार राजाओं का उल्लेख उपलब्ध हुआ।[१८] इनमें से एक भोजदेव का उल्लेख काठियावाड आमरण शिलालेख (वि० सं० १२३३) में मिलता है किन्तु इन भोजदेव का काल ईस्वीसन् की १२ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है और इनका शासन क्षेत्र काठियावाड (सौराष्ट्र) है। अतः काल और क्षेत्र दोनों ही दृष्टि से इनका सम्बन्ध वाराणसी के इस अभिलेख भोजदेव से नहीं हो सकता है। यद्यपि इनके पुत्र ने सन्मतिस्वामी (सुमति) नामक पांचवें तीर्थंकर की उपासना हेतु एक बगीचा दान दिया था।

दूसरे भोज धारा नरेश परमार वंशीय मुंजदेव के भतीजे भोज हैं। यद्यपि इन भोज का अनेक जैन आचार्यों से सम्बन्ध रहा है और जैन प्रबन्धों में इनका विस्तृत उल्लेख भी है। इनका काल ईस्वी सन् की ग्यारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। इसी परमारवंश में एक अन्य भोज भी हुए हैं किन्तु इनका काल तेरहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है, परमारवंशीय इन दोनों

१८ देखें G. C. Choudhary, Political History of Northern India, p. 42-43

भोज (प्रथम) और भोज (द्वितीय) का वाराणसी से कोई सम्बन्ध था, यह ज्ञात नहीं है। पुनः इस लेख की लिपि के आधार पर अनुमानित काल से इन दोनों का काल भी परवर्ती ही है।

इनके अतिरिक्त कन्नौज के प्रतिहारवंशीय राजाओं में एक भोजदेव का उल्लेख मिलता है। ये प्रतिहारों की अवन्ती शाखा के वत्सराज के उत्तराधिकारी नागभट्ट (द्वितीय) के पौत्र एवं उत्तराधिकारी थे। नागभट्ट (द्वितीय) ने ही अपनी राजधानी अवन्ती से कन्नौज स्थानान्तरित की थी। इस भोजदेव का एक अभिलेख देवगढ़ (झाँसी) के जैन मन्दिर से भी प्राप्त है। वह भी इस अभिलेख की तरह एक स्तम्भ लेख है। इसके अतिरिक्त इनका ही एक प्रशस्ति लेख ग्वालियर से भी प्राप्त है। प्रभावकचरित्र[१९] एवं प्रबन्धकोश[२०] के बप्पभट्टिसूरिप्रबन्ध में इन भोजदेव का विवरण उपलब्ध होता है। बप्पभट्टिसूरि द्वारा कन्नौज (कान्यकुब्ज) जाकर इन्हें जैन-धर्म के प्रति श्रद्धावान बनाने के भी उल्लेख हैं। इन स्रोतों से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि भेलूपुर पार्श्वनाथ जन्मस्थल स्थित मन्दिर से प्राप्त इस अभिलेख में उल्लेखित भोजदेव प्रतिहारवंशीय कान्यकुब्ज के राजा भोजदेव ही हैं। दोनों प्रबन्धों और देवगढ़ के अभिलेख (ईस्वी सन् ८६२) से इनका राज्यकाल ईसा की ९ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध सिद्ध है। यही इस मंदिर के जीर्णोद्धार का काल होगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वाराणसी में भेलूपुर स्थित जिनालय के नींव की खुदाई में जो पुरातात्वीक सामग्री प्राप्त हुई है वह चौथी शताब्दी से लेकर १० वीं शताब्दी के मध्य की है। ये सभी प्रतिमाएँ और स्तम्भ चुनार के लाल पत्थर के हैं। इस आधार पर यहाँ चतुर्थ शताब्दी में भी पार्श्वनाथ मन्दिर होने और विभिन्न कालों में उसके जीर्णोद्धार की सूचना मिलती है। अनुमानतः प्रथम मन्दिर लगभग चौथी शताब्दी के पूर्व निर्मित हुआ होगा। आगे उसकी सामग्री का उपयोग करते हुए लगभग छठीं शताब्दी में कोई मन्दिर बना होगा जिसमें उपलब्ध मूलनायक की प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई होगी। पुनः ९ वीं-१० वीं शताब्दी में इस मंदिर का जीर्णोद्धार हुआ होगा। जिनप्रभसूरि के काल तक यहीं मंदिर रहा होगा। पुनः मुगलकाल

---

१९ प्रभावकचरित्र, बप्पभट्टिसूरिचरितम्, ६२०-७६६

२० प्रबन्धकोश, बप्पभट्टिसूरि प्रबन्ध, पृ० ४१-४५

के पश्चात् लगभग १७ वीं शती में पुराने मन्दिर के स्थल पर नवीन मन्दिर का निर्माण हुआ होगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पार्श्वनाथ के जन्मस्थल पर आज से १६०० वर्ष पूर्व भी एक जिनालय था, जो ईंट और पत्थर से निर्मित था और अपने आप में भव्य रहा होगा।

प्रस्तुत लेख हेतु उपलब्ध विविध सूचनाओं और सहयोग के लिए मैं दिगम्बर जैन समाज के वरिष्ठ कार्यकर्त्ता बाबू ऋषभदास जी, श्री मुन्नी बाबू, श्री सतीश कुमार जैन, ब्रह्मचारी पं० श्री धन्यकुमारजी, मंदिर के पुजारी तथा पुरातात्विक सामग्री के काल-निर्णय सम्बन्धी चर्चा के लिए प्रो० मधुसूदन ढाकी, प्रो० अवधकिशोर नारायण, प्रो० कृष्णदेव, प्रो० माहेश्वरी प्रसाद चौबे तथा संस्थान के पूर्व शोध छात्र डा० मारुतिनन्दन तिवारी और अपने शोध-सहयोगी डा० शिव प्रसाद का आभारी हूँ।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

यद्यपि वे जन्म से ही तीन ज्ञान के अधिकारी थे फिर भी बाल्यकाल को बालकों की तरह ही खेलकूद कर बिताया। क्योंकि समयोचित कृत्य ही यही उचित है। उनके द्वारा अर्हत् की अशातना न हो इसलिए उनके साथ खेलते देव जान बूझकर हारने की चेष्टा करते किन्तु वे सहज में ही उन्हें हारने नहीं देते। कारण जो महान हैं वे अन्य भाव प्रबल होने पर करुणा का परित्याग सहज ही नहीं करते। इस भाँति नाना प्रकार की क्रीड़ा करते हुए चालीस धनुक दीर्घ काया वाले प्रभु ने श्री के क्रीड़ा गृह रूप यौवन को प्राप्त किया।

राजा विश्वसेन ने शान्ति के साथ बहुत सी राजकन्याओं का विवाह दिया क्योंकि जो महान शक्तिशाली होते हैं वे पुत्र के एक विवाह से संतुष्ट नहीं होते। पच्चीस हजार वर्ष पूर्ण होने पर उन्होंने शान्ति को सिंहासन पर बैठाया और स्वयं धर्म कार्यमें नियुक्त हो गए। शान्तिनाथ भी यथोचित भाव से राज्य संचालन करने लगे। क्योंकि महान व्यक्तियों का जन्म सबकी रक्षा के लिए ही होता है। तदुपरान्त उन्होंने स्वपत्नियों के साथ भोग सुख में भी समय व्यतीत किया। क्योंकि भोगावली कर्म रहने पर तीर्थंकर को भी भोग करना पड़ता है।

उनकी रानियों में यशोमती प्रमुख थी। सूर्य जैसे मेघ में प्रवेश करता है उसी प्रकार उसने एक चक्र को अपने मुख में प्रवेश करते देखा।

दृढ़रथ का जीव सर्वार्थसिद्धि विमान का आयुष्य पूर्ण कर यशोमती के गर्भ में प्रविष्ट हुआ। उसी समय नींद टूट जाने के कारण यशोमती ने अपने स्वप्न की बात शान्तिनाथ को बतलायी। अवधि ज्ञान धारी शान्तिनाथ ने सब कुछ सुनकर कहा देवी, पूर्व जन्म में दृढ़रथ नामक मेरे एक छोटा भाई था। उसके जीवन इस समय सर्वार्थसिद्धि विमान से च्युत होकर तुम्हारे गर्भ में प्रवेश किया है। यथा समय तुम एक पुत्र को जन्म दोगी। स्वामी से यह सुनकर वह सुबह के मेघ गर्जन को सुनकर पृथ्वी जैसे आनन्दित होती है वैसे ही आनन्दित हो गयी और उसी समय से अपने गर्भ को सुचारु रूप से धारण करती रही। यथा समय उसने एक सर्व सुलक्षण युक्त मानों उसके पति का ही प्रतिरूप हो ऐसे एक पुत्र को जन्म दिया। यशोमति ने स्वप्न में चक्र को

अपने मुख में प्रविष्ट होते देखा था अतः पिताने उसका नाम रखा चक्रायुध। धात्रियों द्वारा पालित होता हुआ पृथ्वी के तिलक स्वरूप चक्रायुध शिशु हस्ती की तरह क्रमशः बड़ा होने लगा। बड़े होने पर अपने पिता की भाँति ही बहुत सी सुन्दर राजकन्याओं के साथ उसका विवाह कर दिया गया।

राज्य शासन करते हुए इस भाँति शान्तिनाथ को पच्चीस हजार वर्ष व्यतीत हो गए। देवलोकों में जिस प्रकार देवों का उपपात होता है वैसे ही शान्तिनाथ की आयुधशाला में उज्ज्वल प्रभा सम्पन्न एक चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। चक्र के लिए उन्होंने अष्टाह्निका महोत्सव किया। पूज्य होने पर भी जो पूजा के योग्य है उसकी पूजा वे भी करते हैं। सूर्य जैसे समुद्र का परित्याग करता है उसी प्रकार वह चक्र आयुधशाला का परित्याग कर दिग्विजय श्री को प्राप्त करने के लिए पूर्वाभिमुख होकर चलने लगा। अरकी भाँति एक हजार यक्ष द्वारा रक्षित उस चक्र का पृथ्वी आच्छादनकारी अपनी सैन्य सहित राजा अनुसरण करने लगे। प्रतिदिन एक योजन पथ अतिक्रम कर वह चक्र जहाँ रुकता शान्तिनाथ भी वहाँ १२ योजन परिमाण स्कन्धावार का निर्माण कर अवस्थित होते। इस प्रकार पथ अतिक्रम कर वे पूर्व समुद्र के अलंकार रूप मगध तीर्थ में आकर उपस्थित हुए। दीर्घस्कन्ध शान्तिनाथ ने समुद्र सैकत पर एक ऐसे स्कन्धावार का निर्माण करवाया जिसमें समुद्र के मध्य भाग में प्रवेश की तरह प्रवेश प्रायः असम्भव था। बिना रक्तपात के युद्ध जय की इच्छा से वे मगध तीर्थ की तरफ मुख करके सिंहासन पर बैठ गये। तब बारह योजन दूरवर्ती मगधपति का सिंहासन मानो उसका एक पाया भंग हो गया हो इस प्रकार काँपने लगा। मगधपति तब मन ही मन सोचने लगे—

यह कैसा अघटित हो रहा है कि मेरा सिंहासन काँपने लगा है? तो क्या मेरा प्रयाणकाल समुपस्थित है? या कोई मेरी समृद्धि को देख नहीं सकने के कारण मेरा सिंहासन कम्पित कर रहा है? ऐसा विचार आते ही अवधि ज्ञान का प्रयोग कर वे जान गए कि चक्री और भावी धर्म चक्री शान्तिनाथ आए हैं। तब मगध तीर्थाधिपति मन ही मन विचार करने लगे—हाय! अज्ञान के वशवर्ती होकर मैंने ऐसी बाल सुलभ कल्पना क्यों की? स्वयं सोलहवें तीर्थंकर और पंचम चक्रवर्ती मुझ पर करुणा कर वहाँ से देख रहे हैं। उनकी तुलना से मैं क्या? मानों सूर्य की तुलना में एक खद्योत। वे त्रिलोकनाथ है। उनकी दीर्घ भुजाएँ त्रिलोक की रक्षा व विनष्ट करने में समर्थ है। जिसके सम्मुख अच्युतादि इन्द्र भी भृत्य की भाँति खड़े रहते हैं उनका मुझ जैसा क्षुद्र क्या सम्मान करेगा? फिर भी त्रिलोकपति यहाँ आए

है तो सूत्र द्वारा जैसे चाँद को सम्मानित किया जाता है वैसे ही अपने नगण्य ऐश्वर्य से मैं उनका सम्मान करूँगा।

ऐसा सोचकर मगध तीर्थाधिपति उपहार सहित शान्तिनाथ के पास आए और आकाश में स्थित होकर उन्हें प्रणाम करते हुए बोले, हे त्रिलोकीनाथ, मेरे सौभाग्य वश ही मुझ जैसे सामान्य व्यक्ति को आपके सन्मुख आने का अवसर आपने दिया है। दुर्गाधिपति जिस प्रकार आपका आदेश पाकर दिवारात्रि दुर्ग की रक्षा करता है मैं भी उसी प्रकार आपका आज्ञावाही होकर पूर्व दिशा का रक्षक बनकर रहूँगा।

ऐसे कहकर उन्हें प्रणाम कर भृत्य की भाँति दिव्य अलंकार और वस्त्र उपहार में दिए। शान्तिनाथ ने उन्हें सम्मानित कर बिदा किया। तब चक्ररत्न ने दक्षिण दिशा की ओर चलना प्रारम्भ किया। शान्तिनाथ भी चक्र का अनुसरण करते हुए निर्विघ्न रूप से अगणित सैन्य बल सहित दक्षिण समुद्र के तटपर पहुंचे। समुद्र तटपर रत्न जड़ित सिंहासन पर बैठ कर वे वरदामपति का ध्यान करने लगे। वरदामपति अवधि ज्ञान से पंचम चक्री का आगमन जानकर विनाश से त्राण पाने के लिए उपहार लेकर उनके सम्मुख उपस्थित हुए। फिर चक्री को प्रणाम कर उनका दासत्व स्वीकार करते हुए उन्हें दिव्य वस्त्रालंकार उपहार दिए। त्रिलोकीनाथ ने भी उन्हें आप्यायित कर विदा दी। तब चक्र ने पश्चिम दिशा की ओर प्रयाण किया।

पान और सुपारी के वृक्षों से समाच्छादित समुद्र तट पर शान्तिनाथ ने तम्बू डाला। आसन कम्पित होने से प्रभास तीर्थाधिपति वहाँ आए और सिंहासन स्थित शान्तिनाथ का स्वागत कर उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। चक्र अब उत्तर पश्चिम पथ पर सिन्धु नदी की ओर चलने लगा एवं चक्री उसका अनुसरण करते हुए पीछे-पीछे चलने लगे। सिन्धु देवी के प्रासाद के निकट सिन्धु नदी के दक्षिण तट पर चलमान नगरी की तरह उन्होंने छावनी डाली। सिंहासन पर बैठकर सिन्धु देवी की ओर देखते हुए योगी जैसे किसी को आकृष्ट करने के लिए ध्यान करता है उसी प्रकार ध्यान करने लगे। अवधि ज्ञान से स्वामी का आगमन जानकर संग्रहित उपहार लेकर भक्तिभाव से सिन्धु देवी उनके सम्मुख उपस्थित हुयी। तदुपरान्त वे करबद्ध होकर बोलीं, आपके सेनाध्यक्ष जैसे आपकी आज्ञा का पालन करते हैं उसी प्रकार मैं भी अब आपके आदेश का पालन करूँगी। ऐसा कहकर उन्हें पुनः प्रणाम कर पृथ्वी के स्वर्ण, रत्न, स्नान के लिए पादपीठ, कुम्भ और अलंकारादि उपहार दिए।

वहाँ से चक्र का अनुसरण करते हुए चक्री ने उत्तर पूर्व की ओर प्रयाण किया। और वैताढ्य पर्वत के सम्मुख पहुंचे। वैताढ्य देव ने शान्तिनाथ को उपहार देकर उनकी अधीनता स्वीकार कर ली।

चक्र का अनुसरण करते हुए शान्तिनाथ तमिस्रा गुहा के निकट पहुँचे और कृतमाल देव को अपने अधीन कर लिया। शान्तिनाथ के आदेश से सेनापति ने चर्म रत्न की सहायता से सिन्धु नदी अतिक्रम कर सिन्धु का दक्षिण भाग जीत लिया। तदुपरान्त सेनापति ने दण्ड रत्न की सहायता से तमिस्रा के उभय द्वार को खोल दिया। हस्तीरत्न पर आरूढ़ होकर चक्रवर्ती तब अपने वर्द्धित होते प्रताप को लेकर सैन्य सहित सिंह की भाँति उस गुफा में प्रविष्ट हुए। अन्धकार दूर करने के लिए सूर्य जैसे पूर्वांचल पर आरोहण करता है उसी प्रकार उन्होंने मणिरत्न को हस्ती के दक्षिण कुम्भ देश पर रख कर गुफा का अन्धकार दूर किया। हाथ में काँकिणी रत्न लेकर गुफा के दोनों ओर ४६ मंडलों का निर्माण करते हुए वे अग्रसर हुए। तदुपरान्त गुहा के अभ्यंतर स्थित उन्मग्ना और निमग्ना नदियों पर वर्द्धकी रत्न द्वारा सेतु निर्माण किया यद्यपि उन नदियों को पार करना दुष्कर था फिर भी उन्होंने सैन्य सहित उन नदियों को पार किया। शक्तिशाली के लिए सब कुछ सहज है। सूर्य के प्रताप से प्रभात में जैसे कमल की पंखुड़ियाँ खुल जाती है उसी प्रकार उनके प्रताप से गुहा द्वार पर उनके उपस्थित होते ही वह उत्तर द्वार अपने आप खुल गया। उस द्वार से वे सैन्य सहित गुहा से बाहर निकले। शक्तिशाली का पथ नदी के पथ की तरह ही निर्बाध होता है।

चक्री को सैन्य सहित निकलते देख म्लेच्छगण एकत्रित होकर इस भाँति बोलने लगे—सिंह रक्षित स्थान में हस्ती के प्रवेश की भाँति मृत्यु की कामना कर कौन यहाँ प्रवेश कर रहा है? पदातिक सेना जो गर्दभ की भाँति धूलि से आवृत होकर स्वयं को सचमुच की सेना समझकर फलांगे लगा रही है वे कौन हैं? वृक्ष पर स्थित मर्कट की तरह हस्ती पृष्ठ पर आरूढ़ होकर कौन आ रहा है? स्रोत में प्रवाहित जल पक्षियों की तरह कौन अश्व पर चढ़े हुए हैं? पंगु की तरह रथ पर कौन बैठे हैं? और यह लौह पिंड क्या है जो चक्राकृति है और जिससे अग्नि शिखाएँ निकल रही है। सियार की तरह ये सब मूर्ख मनुष्य हमारे साथ विवाद करने आ रहे हैं? अधिक क्या बोलना है शत्रु तो विष की भाँति होता है। इसीलिए कौए जैसे पतंगों को विनष्ट कर देते हैं हम भी उसी प्रकार इन्हें विनष्ट कर डालें।

परस्पर इस प्रकार बोलते हुए, चक्री की अग्रगामी सैन्य से युद्ध करने के

लिए नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र हाथ में लिए वे अग्रसर हुए। लोह मुद्गर लिए दीमक के घरों की तरह उन्होंने हाथियों को जमीन पर सुला दिया। लठ मार-मार कर मिट्टी के घड़े या बर्तनों की तरह रथों को चूर-चूर कर दिया। शूकर मांस को पकाने के लिए जैसे शल्य से उसे विद्ध करना पड़ता है उसी प्रकार तीर व बरछीसे अश्व को विद्ध कर डाला। मन्त्रों द्वारा भूतोंको विमोहित करने की तरह बड़े-बड़े लौह कीलकों से उन्हें विमोहित कर डाला। दुर्विनीत किरातो ने बन्दर की तरह कूद-कूद कर विभिन्न प्रकार से उनकी हत्या कर, कुचल कर, थप्पड़ें मार-मार कर, चीत्कार कर, चक्री की अग्रगामी सेना को वन-विध्वंस करने की भाँति विध्वंस कर दिया।

अग्रगामी सेना को विध्वंस होते देखकर भयंकर क्रोध से तप्त वर्ण कृतान्त की तरह अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित होकर सेनापतिरत्न अपने हाथ में खड्गरत्न लेकर अश्वरत्न पर आरोहण कर किरातों की ओर दौड़े। तीन रत्न सेनापतिरत्न, खड्गरत्न अश्वरत्न के एक साथ एकत्रित होने से वे तीनों प्रज्वलित अग्नि-से लगने लगे। अश्वश्रेष्ठ गरुड़ की तरह द्रुतगति से अग्रसर होकर धरती को विदीर्ण करता हुआ सेनापति की मन की गति से भी तेज-गति से दौड़ा। जलस्रोत् के सम्मुख जैसे वृक्ष नहीं ठहरते हैं वैसे ही सेना-पति रत्न के आक्रमण के सामने उनके अश्वारोही और पदातिक सेना खड़ी नहीं रह सकी। कोई गह्वर में कूद पड़ा, कोई झाड़ झंखाड़ में छिप गया, कोई पर्वत पर चढ गया, कोई जल में घुस गया। किसी ने अस्त्रों का परि-त्याग कर दिया, कोई निर्वस्त्र हो गया, कोई मृत की भाँति स्थिर हो गया, कोई जमीन पर लोटने लगा। वृक्ष की शाखा के टूटकर गिरने की तरह किसी का हाथ कट कर गिर गया, फलों की तरह किसी का माथा जमीन पर गिर पड़ा, हथेलियाँ पंखुरियों की भाँति झर कर गिर पड़ी। किसी का दाँत टूट गया, किसी का पैर; किसी की खोपड़ी खाली बर्तन की तरह खन-खन करने लगी। अश्वरत्न सहित जब सेनापतिरत्न समर रूपी समुद्र में अवतरित होते हैं तो जल-जन्तुओं की तरह शत्रु सैन्य का विनष्ट होना स्वाभाविक है।

सेनापति द्वारा इस प्रकार अनुस्यूत होकर किरातगण उसी प्रकार चारों ओर बिखर गए जैसे धुनी हुयी रूई हवा में बिखर जाती है। कई योजन दूर जाकर लज्जा और क्रोध से भरे वे विचार-विमर्श के लिए एकत्रित हुए।

हाय! वैताढ्य पर्वत को लांघकर यहाँ आने की यह विपत्ति क्यों संघटित हुयी। उन्नत समुद्र तरंगों की तरह विशाल सैन्य वाहिनी लिए आकर

उन्होंने हमारी भूमि को आच्छादित कर दिया है। उनकी सेना के एक व्यक्ति ने हमारे प्रतापी योद्धाओं को हरा दिया है। जिनकी भुजाएँ साहस से फूल उठती थी ऐसे हम लज्जा के मारे स्वयं की ओर देख भी नहीं सकते। अब तो हम मुँह दिखाने योग्य भी नहीं हैं। तो क्या हम अब ज्वलन्त आग में प्रवेश कर जाएँ या ऊँचे पहाड़ों से कूद पड़े? या हम विष पान करे या गले में फाँसी लगाकर ऊँची वृक्ष शाखाओं पर लटक जायँ या पुराने कपड़े को फाड़ने की तरह अपने पेट को फाड़ दें या दाँतों से अपनी जीभ को कद्दू की तरह कतर दें? जिस तरह भी हो अब तो मृत्यु ही हमारा शरण-स्थल है। पराजय के पश्चात् कौन स्वाभिमानी व्यक्ति बचना चाहता है? शत्रु को पराजित करने का यदि कोई उपाय हो सके तो हम अपने कुलदेव मेघकुमारों का आह्वान कर पूछें। जिनका सब कुछ लुट गया है, शत्रुओं द्वारा जिनका पौरुष लांछित हो चुका है, उनके तो कुलदेव ही एकमात्र आश्रय हैं।

ऐसा विचार कर चक्री के प्रताप से दग्ध होकर वे मानो सिन्धु नदी में डूबने जा रहे हैं इस भाँति सिन्धु के तट पर पहुँचे। सर्वस्व खो देने वाले जुआड़ियों की तरह वे नग्न और दुःखार्त होकर सिन्धु के सैकत पर सीधे लोट गए। कुल देवताओं की कृपा प्राप्त करने के लिए वे तीन दिन तक उपवास कर वहीं रहे। कारण देवताओं पर भक्ति से ही विजय प्राप्त होती है। तीन दिन के पश्चात् मेघकुमार देव वहाँ आए और आकाश में स्थित रहकर बोले, वत्सगण, दुःखित मत होओ। तुम्हें क्या कष्ट है हमें बताओ। तब वे बोले, कोई चक्रवर्ती हमारी हत्या करने आया है। उसके भय से हम काक पक्षी की तरह यहाँ भाग आये हैं। हे देवगण, आप हमारी रक्षा कीजिए, आप लोग ही हमारे एक मात्र शरेण्य हैं। जब कोई किंकर्त्तव्यविमूढ़ व विपन्न हो जाता है तब इष्टदेव ही उनका आश्रय होते हैं।

मेघकुमार देव बोले, दुःख परित्याग करो। हम तुम्हारे शत्रु को जल में डूबा कर मार डालेंगे।

तब पृथ्वी को समुद्र में बदल डालने की तरह मेघकुमार देव शान्तिनाथ की सेना पर तीक्ष्ण शर रूपी वारि वर्षण करने लगे। अपनी छावनी को जल में डूबते देख चक्री ने चर्मरत्न को अपने हाथों से स्पर्श किया। मुहूर्त्त भर में चर्मरत्न बारह योजन तक फैल गया और समुद्र फेन की तरह जलपर तैरने लगा। शान्तिनाथ के आदेश से समस्त सैन्य लंगर डाली नौका की तरह उस पर चढ़ गयी। तदुपरान्त उन्होंने चर्म रत्न की तरह छत्र रत्न को स्पर्श किया। छत्र रत्न ने भी बारह योजन तक विस्तृत होकर चर्मरत्न

को आच्छादित कर डाला। वातायन पर दीप रखने की भाँति अन्धकार दूर करने के लिए नरश्रेष्ठ शान्तिनाथ ने छत्ररत्न के हथेली पर मणिरत्न रखा। वहाँ सुबह बोया धान दुपहर में पक जाता अतः सैनिकों ने उन्हें ही खाना प्रारम्भ कर दिया। गाथापति रत्न में ऐसी शक्ति होती है। चक्रवर्ती शान्तिनाथ ने इस प्रकार समुद्र यात्री वणिक की तरह उसी महा समुद्र में सात दिन व्यतीत किया।

इस पर चक्र रत्न के अधिष्ठायक यक्ष क्रुद्ध हो गए। वे हाथ में तलवार लेकर मेघकुमार देवों के पास जाकर बोले, यह क्या कर रहे हो तुम लोग? क्या तुम्हें मतिभ्रम हुआ है कि तुमने अपनी शक्ति और अन्य की शक्ति का परिमाप नहीं किया? एक तरफ है आकाश को छूना स्वर्ण शिखर मेरु और दूसरी ओर है मिट्टी और बालू से बनी जंघा ऊँची बल्मीक। एक ओर है समस्त पृथ्वी को आलोक दानकारी सूर्य और दूसरी ओर है टिमटिमाता क्षुद्र खद्योत। एक ओर है महाशक्तिशाली गरूड़ और अन्य ओर है नगण्य नाग। एक ओर है पृथ्वी को धारण करने वाला नागराज और दूसरी ओर है विष-हीन निर्जीव सर्प। एक ओर है स्वयम्भूरमण समुद्र और दूसरी ओर है गृहांगण की क्रीड़ा बापी। एक ओर है त्रिजगत् पूजित चक्री और तीर्थंकर और अन्य ओर है नगण्य म्लेच्छ जिनपर जयलाभ करने हम यहाँ आए हैं। अतः तुम लोग जाओ, इस स्थान का परित्याग करो नहीं तो शान्तिनाथ की आज्ञा वहन करने वाले हम तुम्हारे इस अविनय को सहन नहीं करेंगे। यह याद रखो।

यक्ष देवों के इस प्रकार भर्त्सना करने पर मेघकुमार देव म्लेच्छों के पास आकर उन्हें समझाते हुए बोले, तुमलोग शान्तिनाथ की शरण ग्रहण करो। वे ही तुम्हारे शरण्य हैं। यह सुनकर म्लेच्छगण हाय-हाय कर मदविहीन हाथी की तरह शान्त हो गए! फिर किरातगण नाना वाहन, अलंकार, मूल्यवान वस्त्र, स्वर्ण और रौप्य लिए शान्तिनाथ के पास गए और धरती पर लोट-पोट होकर उनकी वश्यता स्वीकार करते हुए बोले—

हे प्रभु! वन्य वृषभ की तरह हम कभी किसी के वशीभूत नहीं हुए। इसीलिए जब आप यहाँ आए, हमने अज्ञानतावश आपके विरुद्धाचरण कर अपराध किया। हम पर दया करें और हमारा अपराध क्षमा करें। हमें आदेश दीजिए अब हम आपके अधीन रहेंगे। इससे अधिक हम और क्या कह सकते हैं?

[क्रमशः

संकलन

॥ तपस्या के साथ समारोह का औचित्य ॥

उपवास की तपस्या के बाद समारोह के आयोजन को हम एक सामाजिक परम्परा के रूप में अपनाने को अग्रसर हो रहे हैं। आठ या उससे अधिक उपवास किये जाने पर प्रायः यह समारोह आयोजित किये जाने लगे हैं।

इसमें तपस्वी का जुलूस के रूप में बैंड बाजों के साथ पचखाण करने के लिए स्थानक तक जाना, सहभोज का आयोजन करना तथा प्रभावना के रूप में स्मृति स्वरूप थाली, कटोरी, गिलास या अन्य वस्तु रिश्तेदारों, जाति-बन्धुओं एवं स्नेहीजनों को बाँटने की परम्परा सम्मिलित है।

धर्म के नाम पर इस प्रकार की परम्परा की नींव डालना कहाँ तक उचित है, यह एक विचारणीय विषय है।

उपवास का उद्देश्य अपनी प्रवृत्तियों को आत्मोन्मुख बनाना है। स्वयं को क्रोध, मान, माया, लोभ इन कषायों पर विजय प्राप्त करने योग्य बनाना है। शरीर तथा आत्मा अलग-अलग हैं इस शाश्वत सत्य से साक्षात्कार करना है।

यदि आठ, दस, पच्चीस, पचास या सौ उपवास भी कर लिये जावें तथा उसके बाद भी क्रोध, अहं सांसारिक आसक्ति तथा लोभ की दशा में कोई अन्तर न आए या ये बढ़ जाएँ तो उपवास निरर्थक ही है।

उक्त सन्दर्भ में यह देखना है कि समारोहपूर्वक तपस्या करने से कषायों पर विजय नहीं होती है या कषायों में और वृद्धि होती है। जुलूस आदि के पीछे यह तर्क दिया जाता है कि इससे अन्य लोग तपस्या करने को प्रेरित होते हैं किन्तु यह तर्क मानने योग्य नहीं है क्योंकि जुलूस आदि उपवास की मूल भावना के ही विपरीत है। इससे तपस्वी के अहं का अन्त नहीं होता अपितु अहं की तुष्टि होती है। और हम यह जानते ही हैं कि अहं की तुष्टि होने पर उसमें और वृद्धि होती है। यदि तपस्या के बाद अहं की वृद्धि का अवसर तपस्वी के सामने पैदा किया जाता है तो इससे तपस्या का उद्देश्य ही असफल होता है।

बंधु, बांधव, रिश्तेदार भेंट कपड़े आदि लेकर आते हैं, कौन क्या लेकर आया, इस दिशा में सोच विचार से उनकी शुभ कामनाओं को नापा-तौला

जाता है। इससे राग-द्वेष में वृद्धि होती है। प्रीति-भोज का आयोजन वैभव के प्रदर्शन का माध्यम बन जाता है। भोजन तैयार करने में हिंसा बढ़ती है। अपना नाम चिरस्थायी करने के लिए बर्तन आदि का वितरण भी राग-द्वेष एवं परिग्रह बढ़ाता है। इससे माया, मान एवं लोभ इन तीनों कषायों में वृद्धि होती है। इतने आयोजनों में कई प्रसंग क्रोध को उत्पन्न करने वाले आते ही हैं। कई बार यह देखने में आया है कि अहं की तुष्टि का अवसर मानकर तथा यश एवं कीर्ति हासिल करने के उद्देश्य से ही तपस्या की जाती है।

आर्थिक दृष्टि से कमजोर व्यक्ति ऐसे आयोजनों में असक्षम होने से तपस्या कर ही नहीं सकते या आयोजन नहीं कर पाने के कारण हीनता से ग्रसित होते हैं। कई बार देखा-देखी में खर्च तो कर देते हैं किन्तु बाद में उनकी पारिवारिक अर्थव्यवस्था डगमगा जाती है। धनी व्यक्ति भी खर्च करने की इच्छा न होने के कारण तपस्या नहीं कर पाते हैं। इस प्रकार ऐसी परम्पराओं के कारण तपस्या धन से जुड़ जाती है। धन खर्च किये बिना तपस्या सम्भव नहीं होती।

अतएव इस प्रकार की परम्पराओं को विकसित होने से रोका जाना नितान्त आवश्यक है। अन्यथा कषायों पर नियन्त्रण के लिये की जाने वाली तपस्या, कषायों में वृद्धि का कारण बनकर रह जाएगी।

—प्रकाश रातड़िया

हिंसा विरोध, अगस्त १९९०

जैन पत्र-पत्रिकाएं—कहाँ/क्या

कथालोक || अक्टूबर १९९०

इस अंक में है 'निरालम्ब आचार्य हेमचन्द्र' (कन्हैयालाल गौड़), 'धर्म प्रवक्ता कुण्डकौलिक' (मुनि विनयकुमार 'आलोक'), 'अमात्य तेतलीपुत्र' (भँवरलाल नाहटा), 'सिद्धयोगी मुनिश्री पृथ्वीराज जी' (जिनेन्द्र कुमार कोठारी)।

जैन जर्नल || अक्टूबर १९९०

इस अंक में है 'New Vistas in Prakrit Studies' (Satyaranjan Banerjee), 'Jain Theory of Skandhas or Molecules' (N. L. Jain), 'Jain Theory of Measurement and Theory of Trans-finite Numbers' (Navjyoti Singh).

णाणसायर || जून १९९०

इस अंक में है 'कुन्दकुन्द की दृष्टि में असद्भूत व्यवहार नय' (डॉ० रतन चन्द्र जैन), 'कुन्दकुन्द की दृष्टि में भक्ति तत्व' (डॉ० प्रेमसागर जैन), 'आत्मा की आकृति : एक विवेचन' (डॉ० श्रेयांस कुमार जैन), 'अष्ट प्रवचनमाला : एक विश्लेषण' (उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री), 'लिख्यो कहा पढ़े, कछु लख्यो है सो पढ़िए' (डॉ० मालती जैन)।

तीर्थंकर || सितम्बर १९९०

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'अपरिग्रह : प्रदर्शन : धर्मगुरु' (सुरेन्द्र बोथरा), 'चिन्तन क्रान्ति : सवाल पहल का' (अभय प्रकाश जैन), 'पत्रकारिता में जैन दृष्टि' (डॉ० कुमारपाल देसाई), 'सावधान : विज्ञापनों से' (महेन्द्रकुमार/हिमचन्द पहारे), 'कह नहीं पा रहे हैं हम कुछ' (डॉ० आदित्य प्रचण्डिया), 'मूर्तियों की चोरी : जिम्मेदार हम भी' (डॉ० अनिलकुमार जैन)।

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

CIRCULAR ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : 3039, 3174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 38-5960

Branch Office :

Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 5378
5578, 5778

WB/NC-253

Vol. XIV No. 7 **TITTHAYARA** **November 1990**

Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N 24582/73